समयसार, १३ वीं गाथा में नय, निक्षेप, प्रमाण आ गया न, उसका भावार्थ है। सूक्ष्म है परन्तु वह आ गया है। **इन प्रमाण, नय, निक्षेपों का विस्तार से कथन तद्विषयक ग्रन्थों से जानना चाहिये; उनसे द्रव्यपर्यायस्वरूप वस्तु की सिद्धि होती है।**.... क्या कहते हैं? प्रमाण से-द्रव्य त्रिकाली (उसकी) और पर्याय की सिद्धि होती है। प्रमाण परोक्ष हो या प्रत्यक्ष हो परन्तु उन द्रव्य और पर्याय दो की प्रमाण से सिद्धि होती है। है? और उनके बिना वस्तु के नय से एक त्रिकाली को विषय करनेवाला नय-एक भाग; पर्याय को विषय करनेवाला एक भाग व्यवहार, दो नय से वस्तु के एक अंग की यथार्थ सिद्धि होती है, और निक्षेपों में ज्ञेय का भेद है — नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव — इस भेद का ज्ञान

निक्षेप से यथार्थ होता है परन्तु यह सब निक्षेप, नय, प्रमाण, यहाँ विकल्पात्मक लिए हैं। विकल्प जो राग है, उससे उस प्रमाण का ज्ञान, रागमिश्रित विचार में नय का ज्ञान और रागमिश्रित विचार से निक्षेप का ज्ञान तो उस समय में वे हैं, भूतार्थ हैं। भूतार्थ का अर्थ? वह ज्ञान साधने के लिए जो चीज आती है, वह है इतना, परन्तु अपना अनुभव करने पर.... आहाहा! अपना चैतन्य भगवान पूर्णानन्दस्वरूप का अनुभव करने पर यह नय, निक्षेप, प्रमाण सब झूठ है। समझ में आया? जैसे कल कहा था न? जैसे अपने द्रव्य की अपेक्षा से दूसरे द्रव्य, अद्रव्य हैं। आहाहा! यह द्रव्य जो वस्तु है — भगवान आत्मा अपना निज चिदघन, इस स्वद्रव्य की अपेक्षा से परद्रव्य अद्रव्य है। उसकी अपेक्षा से (वह) द्रव्य है, परन्तु इस द्रव्य की अपेक्षा से अद्रव्य है। आहाहा!

उसी प्रकार अपने ज्ञायक की अनुभूति की अपेक्षा से नय, निक्षेप, प्रमाण का ज्ञान झूठा है। आहाहा! समझ में आया? और नय, निक्षेप, ज्ञान का प्रमाण की दृष्टि से देखो, तो वे हैं, है। जैसे स्व द्रव्य की अपेक्षा से पर को, पर को देखो तो अद्रव्य है परन्तु पर की-द्रव्य की अपेक्षा से देखो तो वे द्रव्य हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसे भगवान आत्मा नय, निक्षेप, प्रमाण से भले विकल्पात्मक ज्ञान करे, साधक अवस्था में पहले होता है तो उस अपेक्षा से है। जैसे परद्रव्य, परद्रव्य की अपेक्षा से है; वैसे नय, निक्षेप, प्रमाण का विकल्प से ज्ञान करने पर उस रूप है परन्तु आत्मा का अनुभव करने पर, स्वद्रव्य का अनुभव करने पर; जैसे स्वद्रव्य की अपेक्षा से दूसरा अद्रव्य है; वैसे द्रव्य का अनुभव करने पर प्रमाण, निक्षेप का ज्ञान असत्यार्थ-अभूतार्थ है। आहाहा! ऐसी बात अब, है?

क्योंकि वे ज्ञान के ही विशेष हैं। उनके बिना वस्तु को चाहे जैसा साधा जाये तो विपर्यय हो जाता है।.... प्रमाण से, निक्षेप से, नय से यथार्थ साधना, इसके बिना इस वस्तु का यथार्थ स्वरूप सिद्ध नहीं होता, वस्तु को जानकर ज्ञान-श्रद्धान की सिद्धि करना **प्रथम अवस्था में....** ज्ञान श्रद्धान के सिद्ध होने पर अन्तरंग में सम्यग्दर्शन और ज्ञान हुआ; पीछे प्रमाण आदि की कोई आवश्यकता नहीं, कोई अन्तर सम्यग्दर्शन के लिये फिर प्रमाण आदि, नय-निक्षेप आदि की आवश्यकता नहीं है। आहाहा! पहले निर्णय करना, नय है एक अंश को प्रगट जानता है, चाहे तो निश्चयनय हो तो भी एक अंश को जानता

है, एक अंश को अर्थात् द्रव्य जो सामान्य है, वह एक अंश है और पर्याय वह भी एक अंश है। अत: नय का विषय एक अंश है, प्रमाण का विषय दोनों ही है, निक्षेप का विषय ज्ञेय का भेद है। यह प्रथम श्रद्धा करने से पहले ऐसा वस्तु को सर्वज्ञ ने कहा, अन्य ने कहा उससे विपरीत क्या है ? अन्य ने कहा उससे दूसरी चीज भगवान ने क्या कही है ? — उससे प्रमाण निक्षेप का ज्ञान आता है परन्तु अनुभव करने पर उस श्रद्धान और अनुभव की अपेक्षा से यह प्रमाण, नय, निक्षेप झूठा है। आहाहा! ऐसी बात है। है ?

तत्पश्चात् श्रद्धान की अपेक्षा से वह वस्तुत्व नहीं है। **किन्तु जब दूसरी अवस्था में प्रमाण आदि के अवलम्बन से विशेष ज्ञान होता है और राग-द्वेष-मोहकर्म का सर्वथा अभावरूप यथाख्यातचारित्र प्रगट होता है;....** तब उस प्रमाण नय की चारित्र की अपेक्षा से जो सिद्धि थी, उसकी आवश्यकता नहीं है। समझ में आया ?

....केवलज्ञान की प्राप्ति होती है, केवलज्ञान होने के पश्चात् प्रमाणादिक का अवलम्बन नहीं रहता.... पूर्ण ज्ञान होने के बाद प्रमाण, नय, निक्षेप का विकल्पात्मक ज्ञान वहाँ है नहीं। आहाहा! समझने की चीज है, सेठ! ऐसे नहीं मिले — ऐसी चीज है। बाहर से नहीं मिले, यह चीज अन्दर से मिलती है। आहाहा!

श्रोता : आप समझाते हो तब मिलती है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह समझे तब मिलेगा, समझाने से क्या होता है ? हमारे सब पण्डित है न सामने, हमारे यह भी कृषि पण्डित हैं न। आहाहा! भगवान सुनो तो सही, कहते हैं। आहाहा! अन्तर चीज जो अनन्त गुण का चैतन्य रत्नाकर प्रभु, अनन्त रत्नाकर (अभेद आत्मा है)। एक बार पहले कहा था स्वयंभूरमण समुद्र असंख्य योजन लम्बा है, समस्त द्वीप और समुद्र इस ओर हैं उससे वह स्वयंभू समुद्र तीन योजन लम्बा विशेष है। क्या कहा ? असंख्य द्वीप समुद्र इस ओर है, उसकी लम्बाई गिनो, बाद में स्वयंभू की लम्बाई इससे भी तीन योजन अधिक है (उसमें) नीचे अकेले रत्न भरे हैं, रेत नहीं है। स्वयंभू! वैसे भगवान स्वयंभू आत्मा! आहाहा! है ? आहाहा! उसमें ज्ञान, दर्शन आदि अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... जिसकी मर्यादा / हद नहीं। आहाहा! क्या है ? उस वस्तु में इतने धर्म-गुण हैं कि गुण की संख्या अनन्त... अनन्त... अनन्त...

अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... जितना ले जाओ तो भी उसका अन्त नहीं आता, इतनी संख्या है। इन सब चैतन्यरत्नाकर से भरा भगवान (आत्मा है)। आहाहा! उसका अन्तर में अनुभव करने पर सम्यग्दर्शन होता है। प्रथम धर्म की दशा (प्रगट होती है), वह कहीं क्रियाकाण्ड से और निमित्त से और पर से कोई होता है — ऐसा नहीं है। आहाहा! यह कहते हैं। केवलज्ञान होने के बाद कोई आवश्यकता नहीं है। **तीसरी साक्षात् सिद्ध अवस्था है,....** वहाँ भी किसी आलम्बन की आवश्यकता नहीं है। **इस प्रकार सिद्ध अवस्था में प्रमाण-नय-निक्षेप का अभाव ही है।**

कलश - ९

इस अर्थ का कलशरूप श्लोक कहते हैं :—

(मालिनी)

उदयति न नयश्रीरस्तमेति प्रमाणं
क्वचिदपि च न विद्मो याति निक्षेपचक्रम्।
किमपरमभिदध्मो धाम्नि सर्वंकषेऽस्मि-
न्ननुभवमुपयाते भाति न द्वैतमेव॥ ९॥

श्लोकार्थ : आचार्य शुद्धनय का अनुभव करके कहते हैं कि — [अस्मिन् सर्वङ्कषे धाम्नि अनुभवम् उपयाते] इन समस्त भेदों को गौण करनेवाला जो शुद्धनय का विषयभूत चैतन्य-चमत्कारमात्र तेज पुंज आत्मा है, उसका अनुभव होने पर [नयश्रीः न उदयति] नयों की लक्ष्मी उदित नहीं होती, [प्रमाणं अस्तम् एति] प्रमाण अस्त हो जाता है [अपि च] और [निक्षेपचक्रम् क्वचित् याति, न विद्मः] निक्षेपों का समूह कहाँ चला जाता है, सो हम नहीं जानते। [किम अपरम् अभिदध्मः] इससे अधिक क्या कहें? [द्वैतम् एव न भाति] द्वैत ही प्रतिभासित नहीं होता।

भावार्थ : भेद को अत्यन्त गौण करके कहा है कि प्रमाण, नयादि भेद की तो बात ही क्या? शुद्ध अनुभव के होने पर द्वैत ही भासित नहीं होता, एकाकार चिन्मात्र ही दिखाई देता है।

यहाँ विज्ञानाद्वैतवादी तथा वेदान्ती कहते हैं कि अन्त में परमार्थरूप तो अद्वैत का ही अनुभव हुआ। यही हमारा मत है; इसमें आपने विशेष क्या कहा ? इसका उत्तर — तुम्हारे मत में सर्वथा अद्वैत माना जाता है। यदि सर्वथा अद्वैत माना जाये तो बाह्य वस्तु का अभाव ही हो जाये, और ऐसा अभाव तो प्रत्यक्ष विरुद्ध है। हमारे मत में नयविवक्षा है जो कि बाह्यवस्तु का लोप नहीं करती। जब शुद्ध अनुभव से विकल्प मिट जाता है तब आत्मा परमानन्द को प्राप्त होता है इसलिए अनुभव कराने के लिए यह कहा है कि 'शुद्ध अनुभव में द्वैत भासित नहीं होता।' यदि बाह्य वस्तु का लोप किया जाये तो आत्मा का भी लोप हो जायेगा और शून्यवाद का प्रसङ्ग आयेगा। इसलिए जैसा तुम कहते हो उस प्रकार से वस्तुस्वरूप की सिद्धि नहीं हो सकती और वस्तुस्वरूप की यथार्थ श्रद्धा के बिना जो शुद्ध अनुभव किया जाता है, वह भी मिथ्यारूप है; शून्य का प्रसङ्ग होने से तुम्हारा अनुभव भी आकाश-कुसुम के अनुभव के समान है॥९॥

कलश-९ पर प्रवचन

अब, श्लोक ९ वाँ

उदयति न नयश्रीरस्तमेति प्रमाणं क्वचिदपि च न विद्मो याति निक्षेपचक्रम्।
किमपरमभिदध्मो धाम्नि सर्वंकषेऽस्मिन्ननुभवमुपयाते भाति न द्वैतमेव॥९॥

आहाहा! **आचार्य शुद्धनय का अनुभव करके कहते हैं....** क्या ? शुद्धनय जो ज्ञान का एक निश्चय / सत्य अंश है, उसका विषय जो द्रव्य त्रिकाल है, उसका अनुभव करने पर.... आहाहा! **अनुभव करके कहते हैं कि अस्मिन् सर्वङ्कषे धाम्नि अनुभवम् उपयाते.... इन समस्त भेदों को....** प्रमाण, नय और निक्षेप के भेदों को **गौण करनेवाला....** लक्ष्य में नहीं लेनेवाला। आहाहा! गौण करने का अर्थ यह कि लक्ष्य में नहीं लेनेवाला, **शुद्धनय का विषयभूत....** जो शुद्ध सम्यक् ज्ञान निर्मल, निश्चय उसका विषयभूत भगवान पूर्णानन्द... आहाहा! **चैतन्यचमत्कारमात्र....** चैतन्य चमत्कार वस्तु (निजात्मा है)। आहाहा! जिसमें अनन्त गुण की संख्या की मर्यादा नहीं और जिसमें से केवलज्ञान

आदि उत्पन्न हो तो भी चैतन्य चमत्कार की जितनी शक्ति है, वह पूर्णरूप रहती है। आहाहा! केवलज्ञान आदि उत्पन्न हो तो भी वह ज्ञानगुण चैतन्य चमत्काररूप पूर्ण रहता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसे अनन्त गुण की चैतन्य चमत्कार वस्तु **तेज-पुंज आत्मा है....** चैतन्य के तेज का पुंज प्रभु अनन्त.... अनन्त.... अनन्त.... अनन्त.... ऐसी बेहद / अपरिमित शक्ति का सागर प्रभु तेजपुंज प्रभु है। आहाहा!

उसका अनुभव होने पर... उस वस्तु के सन्मुख दृष्टि करके, वस्तु की ओर सन्मुख होकर; निमित्त, राग और पर्याय से विमुख होकर.... आहाहा! **नयश्री न उदयति नयों की लक्ष्मी उदित नहीं होती।.....** आहाहा! अपनी चैतन्य चमत्कारिक जो चीज है, उसके सन्मुख होकर अनुभव करने पर नय की लक्ष्मी अर्थात् नय के भेद उत्पन्न नहीं होते। **न उदयति नयश्री....** नय उदय नहीं होता। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात है। है? नयों की लक्ष्मी अर्थात् नयों का प्रकार कोई निश्चय और व्यवहार तथा सद्भूत और असद्भूत यह सब कोई नयों की लक्ष्मी वहाँ उदय नहीं होती; वहाँ तो स्वरूप-चैतन्यमूर्ति की ओर का अनुभव है, चैतन्य के अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन है, सम्यग्दर्शन के काल में, जो त्रिकाली चैतन्य भगवान का अवलम्बन लेकर पर्याय में जो अतीन्द्रिय आनन्दादि शक्तियों की जो व्यक्ति की दशा हुई, अनन्त गुण की व्यक्त दशा आंशिक हुई, उस अनुभव में.... आहाहा! नयों की उत्पत्ति नहीं होती। यहाँ विकल्पात्मक नय लिये हैं। आहाहा! **प्रमाण अस्त हो जाता है।** आहाहा! यह विकल्पात्मक प्रमाण की बात है, हाँ!

अन्तर आत्मा पूर्णानन्द का नाथ प्रभु चैतन्य चमत्कार (को) जिसने अपनी दृष्टि में लिया, (दृष्टि में) लेकर उसका अनुभव-जैसा स्वरूप है, उसे अनुकूल, अनुकरण करके जो भवन पर्याय में हुआ। आहाहा! .....

अनुभव चिन्तामणि रतन अनुभव है रसकूप,
अनुभव मारग मोक्ष को, अनुभव मोक्षस्वरूप। *(समयसार नाटक)*

— यह आत्मा का अनुभव, पूर्णानन्द प्रभु की अन्तर्मुख दृष्टि करके जहाँ अनुभव होता है, वहाँ नय उत्पन्न नहीं होता, प्रमाण तो अस्त हो जाता है, प्रमाण अस्त हो जाता है। आहाहा! (यह) विकल्पात्मक प्रमाण की बात है प्रभु!

'निश्चयनयाश्रित मुनिवरों प्राप्ति करे निर्वाण की' — यह शब्द शास्त्र में आया है। यह विकल्परहित (निर्विकल्प) नय की बात है और यहाँ जो चलता है, वह विकल्पात्मक नय, प्रमाण, निक्षेप की बात चलती है। आहा! अन्यत्र तो ऐसा लिया है कि निश्चयनयाश्रित मुनिवरों अथवा ऐसा भी कहा 'विद्वान लोग अन्तर निश्चय के आश्रय को छोड़कर व्यवहार में वर्तन करते हैं परन्तु उनको मुक्ति नहीं होती। आता है न? हाँ! ये विद्वत् जन भूतार्थ को तजकर, त्रिकाली आनन्द के नाथ के अनुभव को छोड़कर व्यवहार में वर्तन करते हैं परन्तु उनको मुक्ति नहीं होती। यदि निश्चयनयाश्रित आत्मा अनुभव में आये तो उसे मुक्ति होती है।

श्रोता : अनादि से ऐसा ही है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु का स्वरूप अनादि से ऐसा है। आहाहा! तीर्थंकर के समवसरण में जाये तो भी यह चीज है। सन्तों की सभा में जाये तो भी यह चीज है। सच्चे सन्त के, हाँ! बाकी तो बाहर से बातें करे कि दया पालो, और व्रत करो, उससे कल्याण होगा, वह तो मिथ्याश्रद्धा, मिथ्या प्ररूपणा है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि पहले वस्तु को सिद्धि करने के लिये.... द्रव्य-पर्यायस्वरूप वस्तु है। निश्चयनय का विषय द्रव्य जो सामान्य; प्रमाण का विषय जो द्रव्य और पर्याय दो होकर द्रव्य (है)। समझ में आया? ऐसे प्रमाण, नय और निक्षेप से प्रथम तो वस्तु की साबिती, सिद्धि, अस्तित्व सिद्ध करने में ज्ञान का विशेष आता है परन्तु जब अन्तर में अनुभव करने पर... आहाहा! सम्यग्दर्शन के काल में जो अनुभूति साथ में होती है, उस अनुभूति के काल में वह नय उदय / प्रगट नहीं होता। अनुभव प्रगट हुआ वहाँ, नय -विकल्प प्रगट होता ही नहीं। आहाहा!

जहाँ अपना भगवान आत्मा अनुभव में आया, सम्यग्दर्शन-ज्ञान के प्रगट के काल में (अनुभव में आया)। आहाहा! तब वहाँ प्रमाण अस्त हो जाता है। दो बातें की हैं — नय उत्पन्न नहीं होता, प्रमाण अस्त हो जाता है। आहाहा! **और निक्षेप चक्र....** आहाहा! **निक्षेपचक्रम् क्वचित् याति, न विद्मः निक्षेपों का समूह कहाँ चला जाता है, सो हम नहीं जानते।.... निक्षेपचक्रम् क्वचित् याति, न विद्मः....** निक्षेप का भेद कहाँ चला जाता है, हम नहीं जानते — ऐसा कहते हैं।

श्रोता : आचार्य महाराज नहीं जानते ?

समाधान : अनुभव में है नहीं। अन्तर आत्मा का अनुभव, जो सम्यग्दर्शन होता है, आहाहा! और सम्यक् भावश्रुतज्ञान होता है, उस काल में उस स्व-तरफ की सन्मुखता का वेदन है। आहाहा! वहाँ निक्षेप का चक्र कहाँ चला जाता है, कहते हैं... उसका अर्थ यह कि निक्षेप का चक्र वहाँ नहीं होता। हम नहीं जानते अर्थात् हम अनुभव में (अभेद) जानते हैं। उसमें यह निक्षेप के भेद कहाँ आये ? आहाहा! यह मार्ग ऐसा है भाई! **निक्षेपचक्रम् क्वचित् याति, न विद्मः कहाँ चला जाता है, सो हम नहीं जानते।** आहाहा! **किम अपरम् अभिदध्मः इससे अधिक क्या कहें ?....** आचार्य महाराज कहते हैं कि अब तुम्हें विशेष क्या कहें ? आहाहा!

अन्तर भगवान आत्मा चैतन्य चमत्कार से भरा प्रभु (है)। उसके स्वसन्मुख होकर अनुभव करने पर नय, निक्षेप, और प्रमाण उत्पन्न नहीं होता। निक्षेप चक्र कहाँ चला जाता है ? जो भाव-निक्षेप है... आहाहा! भावनिक्षेप तो पर्याय है। समझ में आया ? परन्तु पर्याय की दृष्टि भी कहाँ चली जाती है ? — ऐसा कहते हैं। आहाहा! क्या कहा ? नय, निक्षेप तो विकल्प से.... यह निश्चय है और यह व्यवहार है, प्रमाण दो का विषय है परन्तु निक्षेप में जो भावनिक्षेप है वह तो पर्याय, अनुभूति, वह भावनिक्षेप है परन्तु वह भावनिक्षेप है वहाँ दृष्टि पर्याय पर नहीं है — ऐसा कहते हैं। हमारी दृष्टि तो-अनुभव (अभेद) पर है। अतः भाव निक्षेप भी कहाँ चला जाता है, हमें पता नहीं। आहाहा! समझ में आया ? ऐसी बात है।

जब अन्तर में सम्यग्दर्शन के काल में जब अनुभूति होती है, ज्ञान की प्रधानता से अनुभूति कहने में आता है, श्रद्धा की प्रधानता से दर्शन / सम्यक् (दर्शन) कहने में आता है, स्वरूप की प्रधानता से स्वरूप आचरण कहने में आता है। आहाहा! (तीनों) एक ही समय में (है)। कहो! एक यह द्रव्यस्वभाव भगवान पूर्ण... आहाहा! साक्षात् परमेश्वर परमात्मा (है) आहाहा! (समयसार) ३८ गाथा में कहा है — अपने परमेश्वर को भूल गया था — ऐसा पाठ ३८ गाथा में है। जैसे स्वर्ण अपने हाथ में रखा हो, वह दातुन करते हैं न तो (सोने का दाँत हो तो उसे) निकालते हैं (निकालकर) भूल गया, कहाँ है कहाँ है ? ढूँढ़ता है। यहाँ अन्दर ही है। वैसे हाथ में रखा था परन्तु भूल गया। वैसे ही वस्तु

(आत्मा) तो अन्दर में आनन्द का नाथ प्रभु था परन्तु मैं राग और पर्याय के प्रेम में उसे भूल गया था। आहाहा!

श्रोता : याद था कि वह भूल जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भूल का अर्थ ? उसे ख्याल में नहीं लिया, उसका अर्थ यह है। भूल जाने का अर्थ — पहले याद था और बाद में भूल गया — ऐसा नहीं है। अनादि से भूल गया है, वर्तमान एक समय की पर्याय के प्रेम में (परमेश्वर को भूल गया है)। 'पर्याय मूढ़ा परसमया' ऐसा कहा है, प्रवचनसार ज्ञेय अधिकार ९३ वीं गाथा, पहली (गाथा में कहा है) समझ में आया ? तो राग में मूर्च्छित हुआ, वह तो बहुत स्थूल परन्तु एक समय की पर्याय में, मैं इतना हूँ, वह भी 'पर्यायमूढ़ा परसमया' मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया ?

यहाँ तो कहते हैं कि हमारा भगवान इन नय-निक्षेप और प्रमाण के विकल्प से छूटकर वस्तु का अनुभव करने के काल में.... वे पर्याय के भेद कहाँ चले जाते हैं, यह भी हमारे लक्ष्य में नहीं आता।

यहाँ हमारी भाषा वेदान्त जैसी है, परन्तु वेदान्त में तो, अनुभूति है वह पर्याय है — ऐसा वे — वेदान्त (वाले) नहीं मानते हैं — ऐसी चर्चा हमारे वेदान्ती के साथ बहुत हुई थी। वह कहता था कि आत्मा अनुभव करता है तो दो बात कहाँ से आयी ? ऐसा कि आत्मा और अनुभूति — दो, द्वैत हो गया; द्रव्य और पर्याय-द्वैत हो गया (ऐसा नहीं है) समझ में आया ? परन्तु यह वस्तु की स्थिति ही ऐसी है। वस्तु जो त्रिकाली है, उसके सन्मुख होकर अनुभूति है, वह पर्याय है, वह गुण-द्रव्य नहीं है। आहाहा! अतः पर्याय में द्रव्य का अनुभव होने से पर्याय का लक्ष्य भी छूट जाता है। अतः भावनिक्षेप कहाँ चला जाता है ? — (हम नहीं जानते)। आहाहा! ऐसा है भाई!

श्रोता : वेदान्त में पर्याय की बात नहीं है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय है ही कहाँ वेदान्त में! पर्याय माने तो पर्याय, तो द्वैत हो जाता है, वह तो कहा न! द्रव्य और पर्याय दो हो वहाँ द्वैत हो जाता है। यहाँ चर्चा हुई थी। हमारे एक हैं न, मोतीचन्दजी थे रेलवे अधिकारी (थे)। हमारे व्याख्यान में नियमित आते

थे, वहाँ राजकोट में; फिर हो गये परमहंस। बाद में हमारे पास चर्चा करने आये। चर्चा में, झूठा है ऐसा नहीं (क्योंकि) हमारे प्रति तो उनको बहुत मान था तो बहुत चर्चा हुई (हमने) कहा, तुम एकान्त सर्वव्यापक मानते हो तो मैं ऐसा कहता हूँ कि वेदान्त यह कहता है कि सर्व दुःख से आत्यान्तिक मुक्ति होना चाहिए तो यह सर्व दुःख से आत्यन्तिक मुक्ति तो पहले दुःखदशा थी, बाद में मुक्त होता है तो आनन्ददशा आयी, यह तो पर्याय हुई; द्रव्य तो कायम रहता है पर्याय हुई, यह तो द्वैत हो गया, स्वीकार करता था। आया था, परमहंस आया था, मोतीलालजी करके वह दशाश्रीमाली वहाँ राजकोट में थे तो आते थे सदा ९५ में, ९९ वें में, बाद में अन्यमत का साधु हो गया। तेरी बात ऐसी है नहीं प्रभु! अनुभूति है, वह पर्याय है; आत्मा का साक्षात्कार होना, वह पर्याय में होता है, द्रव्य में नहीं। द्रव्य तो ध्रुव है। समझ में आया? कार्य होता है, वह तो पर्याय में कार्य होता है; वस्तु तो त्रिकाली कारणरूप ध्रुव पड़ी है। पर्याय, वह कार्य है और वस्तु वह कारण है, दो वस्तु हो गयी — ऐसा नहीं चलता कहा।

ऐसे यह यहाँ बात कहते हैं। देखो, कि इससे अधिक क्या कहें कि **द्वैत ही प्रतिभासित नहीं होता।** देखो, है? यह द्रव्य है और यह पर्याय है, ऐसा द्वैत भी प्रतिभासित नहीं होता — ऐसा कहते हैं। उसका अर्थ तो वे-वेदान्त अद्वैत कहते हैं, वह यहाँ नहीं लिया है। आहाहा! यही कहते हैं, यह अर्थ में कहेंगे कि **द्वैत भासित नहीं होता।** — उसका अर्थ अद्वैत है — ऐसी चीज नहीं। मैं द्रव्य का अनुभव करता हूँ — ऐसा विकल्प भी जहाँ नहीं और वहाँ पर्याय पर भी लक्ष्य नहीं क्योंकि पर्याय, द्रव्यसन्मुख झुक गयी है। पर्याय, द्रव्यसन्मुख झुक गयी है तो पर्याय का लक्ष्य नहीं है, तथापि पर्याय में कार्य हुआ, वह पर्याय है। अरे! ऐसी बातें। समझ में आया?

यह जैन परमेश्वर सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहीं ऐसी बात नहीं है। समझ में आया? श्वेताम्बर और स्थानकवासी में भी ऐसी यथार्थ बात नहीं है। बात तो ऐसी है। उसमें भी केवलज्ञान में एक समय में ज्ञान और दूसरे समय में दर्शन (मानते हैं)। अरे! यह पूर्ण हो जाने के बाद फिर पहले यह ज्ञान और बाद में दर्शन? समझ में आया? यहाँ तो अनुभव में क्रम नहीं है — ऐसा कहते हैं। अपने स्वरूप-सन्मुख झुक गया... आहाहा! विकल्प

का लक्ष्य छोड़कर, पर्याय का लक्ष्य छोड़कर (स्वरूपसन्मुख झुक गया) नय-निक्षेप और प्रमाण का, वर्तमान वस्तु की सिद्धि की, ज्ञान-विशेष, ज्ञान वह सम्यग्ज्ञान की बात नहीं है, सामान्य ज्ञान की बात है। वह जो ज्ञान का अंग है, इस प्रकार से उसमें नय, निक्षेप, प्रमाण का ज्ञान आता है परन्तु वह ज्ञान कहीं सम्यक् नहीं। आहाहा! सम्यक्ज्ञान-भावश्रुतज्ञान तो ज्ञायक त्रिकाली चैतन्य का कन्द प्रभु चैतन्यरस स्वभाव, अस्तित्व-अकेला चैतन्यप्रकाश का पुंज प्रभु, जिसमें यह द्रव्य है और पर्याय है — ऐसा भी अनुभव में नहीं, तथापि द्रव्य का अनुभव होता है, वह अनुभव पर्याय है।

रात्रि को प्रश्न हुआ था। अलिंगग्रहण (बोल) १८, १९, २०.... रात्रि में किसी ने प्रश्न किया था १८, १९, २० अलिंगग्रहण में २० बोल हैं तो १८ वें बोल में ऐसा आया कि अर्थावबोधरूप गुणविशेष का आलिंगन नहीं करनेवाला द्रव्य है; २० बोल है उसमें १८ वें बोल की बात चलती है। यह तो हमारे नित्य स्वाध्याय का विषय है। सबेरे शाम, सब कण्ठस्थ है सब। समझ में आया? उस १८ वें बोल में ऐसा कहा — (प्रवचनसार) १७२ गाथा, अलिंगग्रहण.... ऐसा कहा कि आत्मा गुणी है और यह गुण है। ऐसा गुणगुणी के भेद का — विशेष (का) जहाँ आलिंगन नहीं करता, भेद का आलिंगन नहीं करता — ऐसा द्रव्यस्वभाव है। आहाहा! १९ और अर्थावबोधरूप पर्याय विशेष, उसे आलिंगन नहीं करनेवाला भगवान आत्मा द्रव्यस्वरूप है। आहाहा! समझ में आया?

जो द्रव्य है, वह पर्याय को स्पर्श नहीं करता — ऐसा कहते हैं। आहाहा! और फिर बीसवें बोल में सूक्ष्म लिया — प्रत्यभिज्ञान का-प्रत्यभिज्ञान का कारण ऐसा सामान्य द्रव्य, उसे आलिंगन नहीं करता — ऐसा आत्मा शुद्ध पर्यायस्वरूप है। अरे यह? यह क्या कहा? बीसवें बोल में — प्रत्यभिज्ञान का कारण ऐसा जो द्रव्य-ध्रुव, उसे नहीं स्पर्श करनेवाला आत्मा, अपनी शुद्ध पर्यायस्वरूप है। जो अनुभव में आया वह मैं हूँ। ध्रुव अनुभव में नहीं आता। समझ में आया? बीसवाँ बोल है। देखना है? है यहाँ? आया नहीं कुछ? यह लो, ओहोहो! यहाँ कहाँ है? है नहीं, प्रवचनसार यहाँ नहीं है? ऐसा क्यों करते हो? एक भी नहीं लाये। प्रवचनसार दो हैं, रखे हैं, यह बीसवाँ बोल है। प्रत्यभिज्ञान का कारण ऐसा जो द्रव्य सामान्य, उसे आत्मा आलिंगन नहीं करता। आहाहा! आत्मा शुद्ध पर्याय स्वरूप है — ऐसा

वहाँ कहा है, क्योंकि जो पर्याय वेदन में आयी वह मैं हूँ — ऐसा वहाँ ले लिया है, वह है। पर्यायदृष्टि नहीं, दृष्टि तो द्रव्य पर है परन्तु द्रव्य की दृष्टि होने से जो पर्याय में वेदन / अनुभव आया वह मैं हूँ — ऐसा अनुभव में आयी थी, वह चीज मैं हूँ। यहाँ पुस्तक नहीं ? एक भी नहीं लगता, दो पुस्तक हैं, किसी के पास यहाँ नहीं है ? वह लेने जाता है। समझ में आया ? सूक्ष्म बात है भाई ! सर्वज्ञ के पन्थ को समझना बहुत सूक्ष्म बात है।

यहाँ तो कहा — १८, १९ (बोल) में ऐसा कहा कि गुणी, गुण के भेद का स्पर्श नहीं करता — ऐसा द्रव्यस्वभाव है। आहाहा ! बाद में कहा कि पर्याय को द्रव्य स्पर्श नहीं करता। आहाहा ! ऐसा द्रव्य है। तीसरे में (२० वें बोल में) ऐसा कहा कि द्रव्य को आत्मा नहीं छूता, पर्याय को छूता है, वह पर्याय अनुभव में आयी, इतना आत्मा है — ऐसा वहाँ कहा है। सूक्ष्म है भाई ! यह तो अन्तर सन्तों की वाणी है। आहाहा ! (पुस्तक) लेने गया है। क्या कहा ? समझ में आया ?

भगवान आत्मा जो यहाँ भावनिक्षेप की पर्याय से रहित कहा है। वहाँ तो यह भावनिक्षेप शुद्धपरिणति जो हुई, वह आत्मा अपने द्रव्य को स्पर्श नहीं करता और पर्यायरूप शुद्ध है, वह मैं आत्मा हूँ — ऐसा २० वें बोल में लिया है। आहाहा ! समझ में आया ? सूक्ष्म है भाई ! रात्रि में चर्चा हुई थी, किसी ने प्रश्न किया था। १८, १९, २०।

अब यहाँ कहते हैं हम जब अपने अनुभव में आते हैं, तो द्वैतपना भासित नहीं होता। मैं अनुभव करता हूँ और इस द्रव्य का कर्ता हूँ — ऐसा द्वैत वहाँ नहीं है। निक्षेप, नय, और प्रमाण तो वहाँ है नहीं परन्तु मैं आत्मा का अनुभव करता हूँ — ऐसा द्वैत भी वहाँ नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ?

श्रोता : तब करता क्या है ?

समाधान : करता है, वेदन करता है, उसमें मैं वेदन करता हूँ और उसका — द्रव्य का वेदन करता हूँ — ऐसा द्वैत नहीं है। आहाहा !

अरे... ! लाये ? यह पुस्तक कोई रखे न तो ठीक, साक्षी दी जाती है न साक्षी। लाओ, लाओ, लाओ भाई ! लो यह आया (बोल) १८ — लिंग-अलिंगग्रहण-अलिंगग्रहण, लिंग से ग्रहण नहीं होता तो उसका अर्थ १७ तो हो गये हैं। लिंग अर्थात् गुण, ऐसा जो

ग्रहण अर्थावबोध-पदार्थ का ज्ञान, वह जिसको नहीं। आहाहा! इसमें भी जरा सूक्ष्म बात है। अर्थावबोध शब्द पड़ा है, उसमें एक गुण अर्थ अवबोध ज्ञान को लिया है परन्तु वहाँ ज्ञान की प्रधानता से बात की है, वरना है सब गुण। पाठ ऐसा है। लिंग अर्थात् गुण — ऐसा अर्थावबोध लिया है। अर्थ अर्थात् पदार्थ का ज्ञान अथवा पदार्थ का गुण ऐसा लेना। अर्थावबोध ऐसा कहा है परन्तु लेना पदार्थ के गुण, अकेला ज्ञान नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है भाई!

अर्थावबोध जिसको नहीं है, वह अलिंगग्रहण है। इस प्रकार आत्मा गुण-विशेष से नहीं आलिंगित... सामान्य चीज है; वह गुण के भेद को स्पर्श नहीं करती। आहाहा! धन्नालालजी! यह तो प्रवचनसार, भगवान की दिव्यध्वनि का सार (है)। प्र-वचन कहो या दिव्यध्वनि कहो। प्र-वचन — प्र अर्थात् विशेष। आहाहा! सन्त कहते हैं। सुनो तो सही, कहते हैं। भगवान अलिंगग्रहण है। लिंग से ग्रहण में नहीं आता। यह तो १७ का अर्थ तो कह दिया है।

१८ वें में लिंग से ग्रहण में नहीं आता, उसका अर्थ? गुण-विशेष से स्पर्श नहीं करता तो यह लिंग ग्रहण नहीं; गुण विशेष से जानने में आता है — ऐसा नहीं। आहाहा! गुणी, गुण के विशेष से जानने में आता है — ऐसा नहीं है। आहाहा! सूक्ष्म बात है। वह जिसे नहीं — ऐसा शुद्ध द्रव्य है।

तत्पश्चात् १९(वाँ बोल) लिंग अर्थात् पर्याय... उसमें (१८ वें बोल में) लिंग अर्थात् गुण था। अतः द्रव्य जो वस्तु है, वह गुण विशेष का स्पर्श नहीं करती। इस कारण अलिंगग्रहण कहा गया है। गुण के भेद का स्पर्श नहीं करती तो लिंग जो गुण, उसको स्पर्श नहीं करती; इसलिए अलिंगग्रहण कहा गया है। आहाहा!

अब पर्याय, वह भी पर्याय के विशेष को द्रव्य स्पर्श नहीं करता। इस कारण उसे अलिंगग्रहण कहा गया है। पर्यायरूपी लिंग को द्रव्य स्पर्श नहीं करता; इसलिए अलिंगग्रहण कहा गया है।

अब, २० (वाँ बोल) लिंग अर्थात् प्रत्यभिज्ञान का कारण — ऐसा जो ग्रहण अर्थात् अर्थावबोध सामान्य अर्थात् द्रव्य, वह जिसे नहीं है, द्रव्य जिसे नहीं है... आहाहा! क्या कहा?

श्रोता : पर्याय की मस्ती चढ़ गयी गुरुदेव!

पूज्य गुरुदेवश्री : अनुभव में पर्याय आयी है, द्रव्य नहीं आया। द्रव्य का अनुभव नहीं होता; अतः आत्मा-द्रव्य को स्पर्शे बिना, है? प्रत्यभिज्ञान के कारण ऐसा ग्रहण सामान्य वस्तु, वह जिसको नहीं है, द्रव्य जिसको है ही नहीं... भाई! यह तो परमात्मा का अलौकिक मार्ग है, भाई! यह कोई विद्वतता का विषय नहीं है। आहाहा!

वह अलिंगग्रहण... इस प्रकार आत्मा द्रव्य से नहीं आलिंगित, द्रव्य को नहीं स्पर्शनेवाला, आत्मा द्रव्य को नहीं छूनेवाला... आहाहा! ऐसी शुद्धपर्याय है। वह शुद्धपर्याय जो वेदन में आयी, वह द्रव्य जो आत्मा है-द्रव्य को आलिंगन नहीं करता, द्रव्य जो वेदन में आया, वह उसकी पर्याय है, पर्याय में वेदन, द्रव्य का वेदन नहीं। ऐसी बातें हैं बापू! मार्ग ऐसा है। वस्तु का स्वरूप ऐसा है। वेदन में पर्याय आती है; अतः कहते हैं कि आत्मा अपने द्रव्य को स्पर्श नहीं करता, नहीं छूता और शुद्धपर्यायमात्र आत्मा है। वेदन में आनन्द आया, वह पर्यायमात्र आत्मा है — ऐसा कहा जाता है।

(अलिंगग्रहण पर) यह सब व्याख्यान हो गये हैं, बहुत विस्तार से हो गये हैं। अभी यहाँ, यहाँ आये न? पहले यहाँ तो सवा दो महीने हुए, उससे पहले यहाँ साढ़े चार महीने में सबके व्याख्यान/स्पष्टीकरण बहुत हो गये हैं। सैंतालीस शक्ति का, सैंतालीस नय का, यह जो छह अव्यक्त के बोल हैं (समयसार) ४९ गाथा में उसका, यह २० अलिंगग्रहण के बोल एक साथ में सबका व्याख्यान थोड़ा हुआ है साढ़े चार महीने में। ए...ई...! परन्तु अब बाहर प्रकाशित हो तब पता पड़े। यह तो क्या पता पड़े? उसमें (टेप में) सब उतर गया है। छह बोल में आया है — अव्यक्त ४९ गाथा में अव्यक्त के छह बोल हैं। वहाँ भी ऐसा लिया है कि छह द्रव्यस्वरूप लोक, वह ज्ञेय है, व्यक्त है, उससे भिन्न भगवान-द्रव्य अव्यक्त है।

सूक्ष्म बात है। यह तो २० वें बोल में अन्दर आ गया है। यहाँ पर्याय आ गयी न! भावनिक्षेप भी वहाँ-अनुभव में पर्याय है नहीं, पर्याय का लक्ष्य है नहीं। आहाहा! आहाहा! अलिंगग्रहण में कहा कि आत्मा शुद्धपर्याय उसरूप ही है। यह वहाँ वेदन की अपेक्षा से कहा है। वेदन में ध्रुव और द्रव्य नहीं आता, तो हमको तो जितना आनन्द और अनन्त गुण की पर्याय का वेदन हुआ, वह मैं हूँ। आहाहा!

अव्यक्त में भी ऐसा कहा है — व्यक्त और अव्यक्त एक साथ जानने में आते होने पर भी, व्यक्त अर्थात् पर्याय, अव्यक्त अर्थात् द्रव्य... अेटले कहते हैं न ? अर्थात् व्यक्त पर्याय, द्रव्य अव्यक्त दोनों का एक साथ ज्ञान होने पर भी अव्यक्त द्रव्य, व्यक्त को (पर्याय को) स्पर्श नहीं करता। आहाहा ! समझ में आया ? यह तो समयसार है। अपने चलता है या नहीं ? यह समयसार चलता है न ? देखो, उसमें देखो न ! ४९.... ४९ गाथा.... ४९ में अव्यक्त के बोल हैं, अव्यक्त ! है ? आहाहा ! ४९ गाथा। **अब अव्यक्त विशेषण को सिद्ध करते हैं....** आया ? आता है पण्डितजी, आया ? भाई, है ? आया ? क्या कहा देखो ! छह द्रव्यस्वरूप लोक जो ज्ञेय है और व्यक्त है, उससे जीव अन्य है, वह अव्यक्त है। आहाहा ! यह तो थोड़ा अभ्यास होना चाहिए। सेठ ! जहाँ तुमने कारंजा में अभ्यास किया है न ? यह तो अध्यात्म का विषय है। आहाहा ! एक बात !

कषायों का समूह जो भावकभाव व्यक्त है, अव्यक्त जीव उससे अन्य है, अव्यक्त है। चितसामान्य में चैतन्य की समस्त व्यक्तियों निमग्न है। सामान्य में विशेष व्यक्तियाँ, पर्याय अन्दर निमग्न है, वर्तमान (पर्याय) के अतिरिक्त.... इसलिए अव्यक्त है। वर्तमान के अतिरिक्त, हों ! वर्तमान पर्याय तो व्यक्त, अव्यक्त को जानती है परन्तु भूत, भविष्य की पर्याय सामान्य में अन्तरलीन है — ऐसे अव्यक्त को नहीं स्पर्श करनेवाला व्यक्त द्रव्य, पर्याय को नहीं स्पर्शता परन्तु पर्याय द्रव्य को नहीं स्पर्श करती। आहाहा ! सूक्ष्म है भाई क्या करें यह चीज ही ऐसी है।

क्षणिक व्यक्ति मात्र नहीं इसलिए अव्यक्त है, यह तो ठीक। व्यक्तता और अव्यक्तता एकमेकपने मिश्रितरूप से प्रतिभासित होने पर भी.... यहाँ यह बात है। व्यक्त अर्थात् प्रगट पर्याय अव्यक्त अर्थात् द्रव्य एकरूप से मिश्रितरूप से ज्ञात होने पर भी, दोनों का ज्ञान एकसाथ होने पर भी, वह केवल व्यक्तता को स्पर्श नहीं करता। आहाहा ! व्यक्त अर्थात् पर्याय, अकेले द्रव्य को स्पर्श नहीं करती, इसलिए अव्यक्त है। आहाहा ! केवल व्यक्तता को स्पर्श नहीं करता। है ? इसलिए अव्यक्त है, केवल व्यक्तता को स्पर्श नहीं करता, अकेले द्रव्य को वह स्पर्श नहीं करता — पर्याय को स्पर्श करता है। आहाहा ! थोड़ा सूक्ष्म है भाई !

पाँचवाँ बोल भी थोड़ा सूक्ष्म है। व्यक्त-अव्यक्त का ज्ञान एक साथ होने पर भी, केवल व्यक्त को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! और व्यक्त है वह अव्यक्त को स्पर्श नहीं करता। द्रव्य है, वह पर्याय को स्पर्श नहीं करता और पर्याय है, वह द्रव्य को स्पर्श नहीं करती। दूसरी चीज के साथ तो वह स्पर्श तीन काल में है ही नहीं। आत्मा, शरीर को स्पर्श नहीं करता, कर्म को स्पर्श नहीं करता, अग्नि को ऐसा हाथ लगाता है तो अग्नि को कभी नहीं स्पर्श करता। इस अंगुली को आत्मा ने कभी स्पर्श नहीं किया। परद्रव्य को तो कभी पर्याय में भी स्पर्श नहीं किया, परन्तु यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि पर्याय उसकी और द्रव्य उसका, उसमें जो व्यक्त और अव्यक्त का ज्ञान एक साथ होता है परन्तु व्यक्त अव्यक्त को अकेला स्पर्श करे ऐसा नहीं है। अव्यक्त को स्पर्श नहीं करता, व्यक्त को स्पर्श करता है। आहाहा! सूक्ष्म बात है भाई! आहाहा! यह तो आ गया न? अब यहाँ (तक) आये हैं।

द्वैत ही प्रतिभासित नहीं होता। आहाहा! आचार्य अन्तर के अनुभव के काल की अपेक्षा से कहते हैं कि जब हम आनन्दमूर्ति प्रभु आत्मा के सम्यग्दर्शन काल में-उत्पत्ति काल में हम अन्दर गये तो उस समय में.... आहाहा! मैं अनुभव करता हूँ और अनुभव आत्मा, पर्याय का है — ऐसा द्वैत भी वहाँ नहीं है। समझ में आये उतना समझना प्रभु! यह तो गहन विषय है, यह कहीं कथा-वार्ता नहीं है। आहाहा! यह तो भागवत कथा.... तीन लोक के नाथ प्रभु... आहाहा! कहते हैं कि हम अपने स्वरूप, जो ध्रुव को-शुद्ध (को) अनुभव करने पर... अनुभव पर्याय है। आहाहा! द्रव्य का अनुभव करने पर.... यह द्रव्य का अनुभव और अनुभव द्रव्य की पर्याय है — ऐसा भेद भी ज्ञात नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? पाटनीजी!

पहले इसका ख्याल तो ले कि यह किस अपेक्षा से कहा है? आहाहा! यह यहाँ आया न — **किम अपरम् अभिदध्मः** इससे **द्वैतम् एव न भाति** उसका अर्थ ऐसा नहीं कि अद्वैत ही आत्मा है — ऐसा नहीं। एक ही आत्मा और अद्वैत है — ऐसा भी नहीं। यहाँ तो द्रव्य और पर्याय द्वैत अन्तर में है, परन्तु अनुभव के काल में यह दो हैं — ऐसा भास नहीं रहता। अरे! ऐसी बात है। यह स्पष्टीकरण करेंगे।

भावार्थ : भेद को अत्यन्त गौण करके कहा है कि प्रमाण, नयादि भेद की

तो बात ही क्या ? शुद्ध अनुभव के होने पर द्वैत ही भासित नहीं होता,..... आहाहा! है ? यह श्लोक ९ का भावार्थ है। नौवाँ कलश।

भावार्थ : भेद को अत्यन्त गौण करके कहा है कि प्रमाण, नयादि भेद की तो बात ही क्या ? शुद्ध अनुभव के होने पर..... आहाहा! भगवान आत्मा... सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रथम उत्पन्न काल में और बाद में भी अनुभव के काल में... आहाहा! वह वहाँ कहा है न ४७ गाथा, द्रव्यसंग्रह — **दुविहं पि भोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणि णियमा।** यह श्लोक है, द्रव्यसंग्रह का (श्लोक/गाथा) ४७, ४ और ७ आहाहा! **दुविहं पि भोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणि णियमा।** निश्चय मोक्षमार्ग और व्यवहार मोक्षमार्ग ध्यान में प्राप्त होता है, उसका क्या अर्थ ?

द्रव्यसंग्रह-नेमिचन्द सिद्धान्त चक्रवर्ती (की गाथा है) कि अपना स्वरूप... पर्याय जब द्रव्य के सन्मुख झुक गयी तब जो अनुभव होता है... आहा! तब निश्चय सम्यग्दर्शन ज्ञान उसमें प्राप्त होता है, ध्यान में प्राप्त होता है। बाहर से कोई विकल्पात्मक का लक्ष्य करके होता है — ऐसा नहीं है। आहाहा! निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र का अंश वो ध्यान में प्राप्त होता है। किस ध्यान में ? अन्तरस्वरूप जो पूर्ण आनन्द की ओर झुकते हैं — ध्येय — ध्यान में द्रव्य को ध्येय बनाकर.... टीका में ऐसा शब्द है। कलश टीका (परम) अध्यात्म तरंगिणी, ध्यान में द्रव्य को विषय कुरू — ऐसा पाठ संस्कृत में है। ध्यान में द्रव्य का विषय कुरू.... पर्याय में द्रव्य का विषय कर, पर्याय का ध्येय द्रव्य बना दे। ध्येय द्रव्य है और पर्याय उसका ध्यान करती है। आहा! समझ में आया ? ऐसी बातें, बापू! अभी तो बहुत गड़बड़ हो गयी है।

श्रोता : बहुत गड़बड़ हो गयी है अर्थात् क्या ?

समाधान : कोई कुछ मानते हैं, कोई कुछ मानते हैं... व्यवहार-यह दया, दान करो, व्रत करो, तप करो, आहाहा! और वहाँ ऐसा शुभराग आता है, गुण-गुणी का भेद (आता है), उससे भी लाभ होता है — ऐसा यह सब गड़बड़ है।

श्रोता : वस्तु में थोड़े ही गड़बड़ है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु गड़बड़ नहीं है परन्तु गड़बड़ मानते हैं न.... वही तो यहाँ

कहते हैं। आहाहा! कोई कहता है कि निमित्त से होता है और कोई कहता है व्यवहार से निश्चय होता है, सब गड़बड़ है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि **शुद्ध अनुभव के होने पर द्वैत ही भासित नहीं होता,....** मैं अनुभव करता हूँ और द्रव्य का अनुभव करता हूँ — ऐसा द्वैत भी वहाँ नहीं है।

श्रोता : प्रमाण उत्पन्न होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो विकल्प है। दो लक्ष्य में आ जाते हैं तो 'एकडे एक और बिगड़े दो' दो होते हैं तो बिगड़ जाता है। एकरूप प्रकाशमान चैतन्य में देखने से द्वैत भासित नहीं होता, यदि द्वैत भासित हो तो राग आता है। उसमें तो आत्मा का नुकसान होता है- बिगाड़ होता है। यह एकड़े एक आता है या नहीं? एकड़े एक और बिगड़े दो। दो और बिगड़ते हैं दो, बिगड़ते दो, द्वैत लक्ष्य में लेते हैं तो आत्मा को विकल्प उत्पन्न होता है और बिगाड़ होता है। आहाहा! यह कहा है न? **शुद्ध अनुभव के होने पर द्वैत ही भासित नहीं होता, एकाकार चिन्मात्र ही दिखाई देता है।**

अब स्पष्ट करते हैं — **यहाँ विज्ञानाद्वैतवादी तथा वेदान्ती कहते हैं** देखो! **कि अन्त में परमार्थरूप तो अद्वैत का ही अनुभव हुआ।....** तुमने बातें बहुत कीं परन्तु अन्त में तो हमारा अद्वैत आया। विज्ञान अद्वैतवादी है बौद्ध और यह वेदान्ती। **अन्त में परमार्थरूप जो अद्वैत का ही अनुभव आया यही हमारा मत है;...** वेदान्त कहते हैं। अरे! सुन तो सही।

इसमें आपने विशेष क्या कहा?.... इसका उत्तर — **तुम्हारे मत में सर्वथा अद्वैत माना जाता है। यदि सर्वथा अद्वैत माना जाये तो बाह्य वस्तु का अभाव ही हो जाये,....** बाह्य वस्तु का अभाव हो जाता है और पर्याय का भी अभाव हो जाता है, अकेला अद्वैत मानने से। आहाहा! समझ में आया? **बाह्य वस्तु का अभाव....** लोप हो जाता है। क्योंकि एक ही आत्मा है, एक ही है तो दूसरी चीज है उसका लोप हो जाता है। और ऐसा अभाव तो **प्रत्यक्ष विरुद्ध है। हमारे मत में नयविवक्षा है....** नय की अपेक्षा से कथन है, किस अपेक्षा से यह कहा, क्या? **जो कि बाह्यवस्तु का लोप नहीं करती।....** पर्याय नहीं है, बाह्यवस्तु नहीं है — ऐसा नहीं है। अद्वैत भासित होता है

तो उसके अर्थ में पर्याय नहीं है, परवस्तु नहीं है — ऐसा नहीं है। पर्याय है, बाह्य अनन्त वस्तुएँ हैं, अनन्त भगवान हैं, अनन्त सिद्ध हैं, अनन्त निगोद हैं, अनन्त पुद्गल परमाणु हैं। आहाहा!

जब शुद्ध अनुभव से विकल्प मिट जाता है.... ऐसा है। है? **तब आत्मा परमानन्द को प्राप्त होता है.....** आहाहा! **इसलिए अनुभव कराने के लिए....** अनुभव कराने के लिए **यह कहा है कि 'शुद्ध अनुभव में द्वैत भासित नहीं होता।'....** समझ में आया? **यदि बाह्य वस्तु का लोप किया जाये तो आत्मा का भी लोप हो जायेगा....** क्योंकि बाह्य वस्तु है, उसका पर्याय में ज्ञान तो होता है। यदि बाह्य वस्तु नहीं हो तो जो पर्याय में ज्ञान हुआ, वह पर्याय भी नहीं है — ऐसा हुआ। अपनी पर्याय में छह द्रव्य का ज्ञान तो होता है, इतनी ताकत है। अतः पर्याय माने तो छह द्रव्य माने यह उसमें आया। पर्याय आयी, छह द्रव्य आये। आहाहा!

आत्मा का भी लोप हो जायेगा और शून्यवाद का प्रसङ्ग आयेगा। इसलिए जैसा तुम कहते हो उस प्रकार से वस्तुस्वरूप की सिद्धि नहीं हो सकती और वस्तुस्वरूप की यथार्थ श्रद्धा के बिना जो शुद्ध अनुभव किया जाता है,.... यथार्थ द्रव्य, पर्याय अनन्त गुण आदि की श्रद्धा के बिना अकेला शुद्ध अनुभव या शुद्ध अनुभव तो होता नहीं परन्तु मानते हैं कि हम शुद्ध अनुभव करते हैं। **वह भी मिथ्यारूप है; शून्य का प्रसङ्ग होने से तुम्हारा अनुभव भी आकाश-कुसुम के अनुभव के समान है।**

विशेष कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)